क्या गौरैया बच पाएगी?

पिछले कुछ वर्षों में गौरैया की संख्या में आश्चर्यजनक और चिंताजनक गिरावट आई है। मीडिया द्वारा इस बारे में किए गए प्रचार के फलस्वरूप आधारहीन अटकलबाज़ियों को बल मिला है और ऐसा चित्र उभारा जा रहा है कि गौरेया की गिरती संख्या किसी विनाशकारी पर्यावरणीय दुर्घटना का सूचक है।

आर. जे. रंजीत डेनियल्स

यह एक रोचक संयोग है कि 23 साल पहले सालिम अली ने अपनी आत्मकथा के लिए शीर्षक चुना था - *द फॉल ऑफ ए स्पैरो* यानी एक गौरैया की मौत। मानो घरों में पाई जाने वाली घरेलू गौरैया पर भविष्य में आने वाले संकट का उन्हें पूर्वाभास हो गया था। जिस गौरेया की मौत ने सालिम अली को पक्षी विशेषज्ञ बनने के लिए प्रेरित किया वह घरेलू गौरैया न होकर एक अन्य प्रजाति - येलो थ्रोटेड स्पैरो थी। किंतु इसकी तुलना में बहुतायत से पाई जाने वाली घरेलू गौरैया पर उन्होंने 1906-07 में केवल 10 वर्ष की आयु में अपनी पहली वैज्ञानिक रचना लिखी थी।

सालिम अली की किशोरावस्था के समय घरेलू गौरेया शहरों में सबसे अधिक संख्या में पाए जाने वाले पक्षियों में से एक थी। किंतु पिछले कुछ वर्षों में देश में (और विदेशों में भी) इसकी संख्या में आश्चर्यजनक और चिंताजनक गिरावट आई है। मीडिया द्वारा इस बारे में किए गए प्रचार के फलस्वरूप आधारहीन अटकलबाज़ियों को बल मिला है और ऐसा चित्र उभारा जा रहा है कि गौरेया की गिरती संख्या किसी विनाशकारी पर्यावरणीय दुर्घटना का सूचक है। पेड़ों की घटती संख्या, मानवीय आवासों का बदलता ढांचा (जिसके कारण गौरैया को घोंसला बनाने के लिए समुचित स्थान नहीं मिलते), कीटनाशकों का अंधाधुंध उपयोग, अनाज के परंपरागत गोदामों और किराना दुकानों की संरचना में बदलाव (जिनके कारण गौरैया को दाना चुगने का अवसर नहीं मिलता), वायु प्रदूषण और वातावरण में बढ़ता विद्युत-चुम्बकीय विकिरण, कुछ ऐसे कारक हैं जिन्हें गौरैया की घटती संख्या के लिए ज़िम्मेदार बताया गया है।

एक पूर्व अनुभव

घरेलू गौरैया की घटती संख्या के प्रति फैली इस घबराहट से मुझे उभयचर वर्ग (Amphibia) की कथित रूप से घटती संख्या को लेकर लगभग 20 साल पहले फैली चिंता की लहर की याद आ गई। इस चिंता की लहर के परिणामस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) के तत्वावधान में उभयचरों की घटती संख्या पर विशेष

कार्य बल का गठन किया गया था। तुरंत ही, बढ़ता वैश्विक तापमान, पराबैंगनी विकिरण, किसी घातक फफूंद का हमला, उभयचरों का अधिक संख्या में शिकार आदि कारण उनकी घटती संख्या के लिए उभर कर सामने आ गए। वैज्ञानिक शोध कार्य के फलस्वरूप यह बात ज़रूर स्पष्ट हुई कि इनमें से एक या एक से अधिक कारकों का उभयचरों की संख्या पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा था, किंतु यह भी स्पष्ट था कि अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग कारकों का प्रभाव कम या अधिक था।

उभयचर वर्ग पर इस प्रकार वैज्ञानिकों का ध्यान केंद्रित होने का यह फायदा हुआ कि इस समूह के जंतुओं के जीवन और पारिस्थितिकी के बारे में नई जानकारियां मिली। कुछ ऐसी नई प्रजातियों की भी पहचान की गई जिनके बारे में कोई विवरण उपलब्ध नहीं था। किंतु दुर्भाग्य से नई प्रजातियां खोजने की होड़ में कार्य बल अपने मूल उद्देश्य से भटक गया। संसार के कुछ भागों, विशेष रूप से भारत और श्रीलंका में, जीव शास्त्रियों ने अपना ध्यान उभयचरों की घटती संख्या की बजाय महज इनके नमूने इकट्ठा करने, नई प्रजातियों का नामकरण और पुनर्नामकरण करने में लगा दिया। इस भटकाव के पक्ष में यह तर्क दिया गया कि प्रजातियों के विलुप्त होने से पहले उन्हें सूचीबद्ध कर लेना ज़रूरी है।

उभयचरों की जनसंख्या और भौगोलिक वितरण के बारे में ठोस आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण यह निश्चित रूप से कह पाना भी संभव नहीं हो पाया है कि भारत में उभयचरों की संख्या में वास्तव में कमी हुई है। इसी प्रकार, वैज्ञानिक जानकारी के अभाव में उभयचरों की कथित रूप से घटती जनसंख्या के लिए ऊपर दिए गए कारकों में से वास्तव में कौन-सा कारक ज़िम्मेदार है यह तय कर पाना भी संभव नही हो पाया है।

पश्चिमी घाट के सबसे अधिक कीटनाशक-प्रभावित क्षेत्र में 2002-03 में किए गए अध्ययन से यह बात सामने आई थी कि उभयचर प्रजातियों के लिए सबसे बड़ा खतरा उनके आवासीय स्थानों के नष्ट होने के कारण था। इस अध्ययन से उभयचर पारिस्थितिकी की हमारी समझ की कई खामियां उजागर हुईं। उभयचरों, विशेष रूप से मेंढकों और टोड्स की आवासीय आवश्यकताओं, आवास के लिए अनुरूप स्थानों की उपलब्धता और इनके उपयोग के बारे में विस्तृत मैदानी अध्ययन की आवश्यकता है। बहुतायत से पाई जाने वाली उभयचर प्रजातियों की भी आवासीय आवश्यकताओं की अच्छी समझ न होना ऐसी स्थिति है जिस पर वैज्ञानिक समुदाय को गर्व तो नहीं हो सकता।

नसीहत

गौरैया के संदर्भ में उभयचर वर्ग की इतनी लम्बी कहानी सुनाने का उद्देश्य यह है कि उभयचर वर्ग के अध्ययन से उपजी इन महत्वपूर्ण नसीहतों के संदर्भ में मैं यह चेतावनी देना चाहता हूं कि विद्युत-चुम्बकीय विकिरण जैसे पर्यावरणीय कारकों को किसी प्रजाति की घटती आबादी से जोड़ने में यह खतरा हो सकता है कि देर-सबेर गौरैया और अन्य पक्षी प्रजातियों पर अवांछनीय प्रयोग होने लगेंगे। सूर्य से विद्युत-चुम्बकीय विकिरण प्राकृतिक रूप से निकलता रहता है और यह पृथ्वी तक प्रति सेकंड करोड़ों इकाइयों में पहुंचता रहता है। रेडियो तरंगों और माइक्रोवेव तरंगों का उपयोग दूरसंचार के लिए लंबे समय से होता आया है। वन्य जीवन के अध्ययन में टेलीमेट्री का उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। दूरसंचार में दृश्य-श्रव्य और पराध्वनि संकेतों को विद्युत-चुम्बकीय तरंगों में बदला जाता है जो प्रकाश की गति से प्रवास करती हैं। यदि ये तरंगें पक्षियों के लिए हानिकारक होतीं तो वे शहरी पर्यावरण में रहने वाले अन्य जंतुओं को भी न बख्शतीं। दूरसंचार के साधनों के बढ़ने के कारण बढ़ता विद्युत-चुम्बकीय विकिरण गौरैया के अलावा कौओं, उल्लुओं, मैनाओं, चमगादडों और छिपकलियों के लिए भी हानिकारक होता।

गौरैया की विविधता

कुछ अधिक विशिष्ट कारकों के विश्लेषण से घरेलू गौरैया की संख्या में कमी का बेहतर स्पष्टीकरण प्राप्त हो सकता है। इसके लिए हम सबसे पहले गौरैया की वंशावली

को देखें। कम से कम 8 विविध वंशों यानी जीनस के पक्षियों को गौरैया कहा जाता है। यहां जिस गौरैया की चर्चा हो रही है वह पासर जीनस की है। घरेलू गौरैया *पासर डोमेस्टिकस* को छोड़कर अन्य सभी उप-कटिबंधीय और समशीतोष्ण क्षेत्रों में पाई जाती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप में पासर जीनस की कम से कम छह प्रजातियां पाई गई हैं। ये हैं - स्पैनिश गौरैया, सिंध गौरैया, युरेशियन ट्री गौरैया, रसेट या सिनेमन गौरैया और डेड सी या अफगान स्क्रब गौरैया।

स्पैनिश गौरैया सर्दियों में उत्तर भारत में प्रवास पर आती हैं। युरेशियन ट्री गौरैया एक उत्तरी प्रजाति है, किंतु इसके कुछ सदस्य स्थाई रूप से भारतीय प्रायद्वीप में रहते हैं। रसेट और डेड सी गौरैया भारतीय प्रायद्वीप में बिल्कुल नहीं पाई जाती। ऐसा लगता है कि घरेलू गौरैया एक असाधारण प्रजाति है जो मानव प्रजाति के साथ-साथ अफ्रीका और पश्चिम एशिया (जहां संभवतया उसकी उत्पत्ति हुई थी) से निकल कर पूरे संसार में फैल गई।

दूसरे, हमें घरेलू गौरैया के प्रवास व्यवहार को भी समझना होगा। सालिम अली और रिप्ले ने इसकी चार उप-प्रजातियों की पहचान की है। इन चार में से *इंडिकस* उप-प्रजाति भारतीय प्रायद्वीप और श्रीलंका में पाई जाती है। आम तौर पर इसे अप्रवासी पक्षी माना जाता है, किंतु यह स्थानीय स्तर पर प्रवास करती है। बिब्लिकस उप-प्रजाति मध्य-पूर्व में भारतीय सीमाओं के बाहर रहती है। पार्किनी और बैक्ट्रिएनस उप-प्रजातियां उत्तर भारत में प्रवासी के रूप में आती हैं जहां वे इंडिकस के साथ घुल-मिल जाती हैं। घरेलू गौरैया की बैक्ट्रिएनस उप-प्रजाति के जिन सदस्यों को भरतपुर में छल्ले पहनाए गए थे वे कज़ाकिस्तान में पाए गए। ज़ाहिर है कि प्रवासी पक्षियों के आने के कारण घरेलू गौरैया की स्थानीय जनसंख्या में घट-बढ़ होती रहती है।

तीसरा मुद्दा यह है कि घरेलू गौरैया ऐसा पक्षी नहीं है जिसे घोंसला बनाने के लिए दीवारों में बने छेदों की ही आवश्यकता हो। पाकिस्तान की क्वेटा घाटी में घरेलू गौरैया प्रायः पेड़ों पर घोंसले बनाती देखी गई हैं। रोचक बात यह है कि उत्तरी अमेरिका में बाहर से लाई गई घरेलू गौरैया भी पेड़ों पर घोंसले बनाती हैं। मैंने स्वयं घरेलू गौरैया को खुले कुंओं में 8-10 मीटर की गहराई पर कुएं की दीवार में घोंसले बनाते और चूज़ों को सफलतापूर्वक पालते देखा है।

वैसे पक्षियों की आवासीय आवश्यकताएं केवल घोंसला बनाने के लिए उपयुक्त स्थान मिल जाने से ही पूरी नहीं हो जाती। उन्हें भोजन और प्रजनन साथी प्रायः घोंसला बनाने के स्थान से काफी दूरी पर मिलते हैं। वयस्क घरेलू गौरैया को भोजन दानों के रूप में सड़क के किनारे, घरों के आंगनों में और खलिहानों आदि में मिल जाता है। किंतु छोटे बच्चों को भोजन के रूप में केवल कीड़े ही खिलाने पड़ते हैं। 3 से 6 बच्चों के लिए भोजन जुटाने के लिए माता-पिता को (प्रायः माता को ही) आसपास काफी फेरे लगाने पड़ते हैं। इसका मतलब यह होता है कि यदि भोजन (कीड़े) घोंसले के पास ही उपलब्ध हों तो कम फेरों में बच्चों को अधिक भोजन मिल सकता है।

घोंसला बनाने और भोजन तलाशने के अलावा गौरैया की एक और आवश्यकता होती है। गौरैया की सभी प्रजातियों को धूलि-स्नान की आदत होती है। शाम को सोने से पहले गौरैया ज़मीन में एक तश्तरी के आकार का गड्ढा बना कर उसमें धूल से नहाती है। इससे उनके पंख साफ रहते हैं और उनमें रहने वाले कीट आदि परजीवी मर जाते हैं।

चौथी बात - घरेलू गौरैया एक ऐसी प्रजाति है जो मनुष्य की सहायता से फैली है। मानवीय गतिविधियों के कारण इस पक्षी के लिए घोंसला बनाने के स्थान और वयस्कों और बच्चों के लिए भोजन आसानी से उपलब्ध हो जाते थे। किंतु मनुष्य के रहन-सहन में हुए बदलावों के कारण गौरैया संकट में पड़ गई। आधुनिक कस्बे और शहर गौरैया के लिए सुविधाजनक नहीं हैं। आधुनिक इमारतों में घोंसले बनाने के लिए समुचित स्थान नहीं होता। इनमें भोजन ढूंढना और भी कठिन होता है क्योंकि मिट्टी की ऊपरी सतह (जिसमें कीड़े रहते हैं), मलबे, कांक्रीट और डामर से ढंक चुकी होती है। कीटों (विशेष रूप से नरम शरीर वाले कीटों) की संख्या में भी कीटनाशकों के उपयोग के कारण कमी आई है। शहरी बगीचों में घास का अभाव होता है और विदेशी पौधे लगाए जाते हैं जिन पर स्थानीय कीट पनप

नहीं पाते, धूलि-स्नान के लिए पर्याप्त स्थान नहीं होते। खुले कुंओं को या तो ढंक दिया गया है या स्थाई रूप से भर दिया गया है।

इन सब कारकों के चलते घरेलू गौरैया की संख्या और विस्तार में कमी होना अवश्यंभावी है। यह स्थिति केवल घरेलू गौरैया की ही नहीं है। मनुष्य पर निर्भर पक्षियों की अन्य प्रजातियों जैसे बुलबुल, चित्तेवाला फाख्ता, ब्राह्मनी चील, सुनहरी पीठ वाला कठफोड़वा, महोका और दहियल की संख्या में भी गिरावट आई है। यह गिरावट संभवतया 40-50 वर्ष पहले शुरू हुई थी किंतु उस समय इस ओर ध्यान नहीं गया।

शहरी परिवेश

जब बगीचों में रहने वाले पक्षी बच्चों को बड़ा करने में लगातार असफल होने लगे तब यह एहसास हुआ कि कोई पर्यावरणीय समस्या है। साठ के दशक में मैंने बुलबुल के कुछ ऐसे बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा किया था जो घोंसले से बाहर गिर गए थे। किंतु धीरे-धीरे शहर के बगीचों से जानी-पहचानी पक्षी प्रजातियां गायब होने लगीं। चेनै में जिस भवन में मैं रहता हूं उसमें काफी संख्या में

वर्ग पहेली 54 का हल

वा	ले	स				उ	त्त	र
ट		म	नो	चि	कि	त्सा		सा
स	खी			ल		ह		य
न		स	ह	म	त		बी	न
	मो		ब		र		ज	
आ	म		ल	स	ल	सा		सं
स		को		त			जां	च
व		प	र्ण	ह	रि	म		र
न	क	ल				द	क्षि	ण

घरेलू गौरैया रहती थीं और मैंने उनमें रुचि लेना शुरू किया।1992 से लगातार 10 वर्षों तक मैंने उनकी मदद करने के लिए लकड़ी के बक्सों का इंतज़ाम किया जिसमें वे घोंसले बना सकती थीं। घोंसले बन जाते थे और अंडों से बच्चे भी बाहर आ जाते थे, किंतु वे प्रायः कौओं का शिकार हो जाते थे। कौए उन्हें या तो घोंसलों से बाहर खींच लेते थे या फिर उन्हें उनकी पहली उड़ान के समय पकड़ लेते थे। इस भवन में अब कोई घरेलू गौरैया नहीं है।

बगीचों में रहने वाले पक्षियों के लिए शहरी पर्यावरण सुरक्षित नहीं रह गया है। ये पक्षी या तो कम ऊंचाई वाली झाड़ियों में घोंसला बनाते हैं या फिर भवन के समीप किसी बेल की घनी पत्तियों के बीच। शहरों के निवासी अब इस प्रकार के पौधों को पसंद नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि पक्षियों को बरबस थोड़ी खुली जगह में स्थित पौधों पर घोंसले बनाने पड़ते हैं। यहां इन्हें घरेलू बिल्लियों, नेवलों, लाल मुंह के बंदरों, चूहों और कौओं से खतरा बना रहता है। भारत के अधिकांश शहरों में इन परभक्षियों की संख्या में वृद्धि हुई है। घने पेड़ पास-पास लगे होने के कारण खुले स्थानों की कमी हो गई है जिसका विपरीत प्रभाव फाख्ता और लटोरा जैसे पक्षियों पर पड़ा है जो खुली जगहों में भोजन ढूंढते हैं।

क्या हम घरेलू गौरैया और बगीचों में रहने वाले पक्षियों को शहरों में वापस ला सकते हैं? शहरी पर्यावरण पूरी तरह से मनुष्य पर निर्भर होता है। पूरे संसार में पक्षियों ने मनुष्य से प्रभावित पर्यावरण में अपने आप को ढाल लिया है, कुछ ने थोड़े समय के लिए तो कुछ ने लम्बे समय के लिए। भारत में 60-100 पक्षी प्रजातियों ने स्वयं को शहरी वातावरण के अनुकूल बना लिया है। इसी कारण सालिम अली ने अपनी पुस्तक भारत के पक्षी में उन्हें 'बहुतायत से पाए जाने वाले' की श्रेणी में रखा है। ***(स्रोत फीचर्स)***

यह लेख करंट साइंस पत्रिका में प्रकाशित हो चुका है। लेखक केयर अर्थ में हैं। पता - नं. 5, 21वी गली, तिलाईगंगा नगर, चेन्नै 600061
e-mail: ranjit.daniels@gmail.com